अष्टपाहुड़। तेरहवाँ पृष्ठ है। सम्यग्दृष्टि का अमूढदृष्टि (नामक अंग चलता है)। धर्मी जीव होता है, उसे आत्मा का शुद्ध चैतन्यस्वरूप अनुभव में आकर प्रतीतिरूप हुआ होता है। उसे आठ गुण होते हैं। हैं तो पर्याय के भेद। आठ किरणें। जैसे सूर्य को किरणें होती हैं, उसी प्रकार समकित की किरणें, आठ लक्षण-गुण हैं। उनमें अमूढदृष्टि की व्याख्या चलती है।

लोकरूढ़ि। **अदेव में देवबुद्धि,...** धर्मी को अदेव में देवबुद्धि नहीं होती। **अधर्म में धर्मबुद्धि,...** नहीं होती। **अगुरु में गुरुबुद्धि इत्यादि देवादिक मूढता है,...** ये तीनों देव मूढता कहलाती है। यह कल्याणकारी नहीं है। ये भाव कल्याणकारी आत्मा के नहीं हैं, इसलिए ये भाव समकिती-धर्मी को नहीं हो सकते।

सदोष देव को देव मानना... हथियार रखे, स्त्री रखे, आहार-पानी हो, रोग हो, ऐसे देव को देव मानना, वह भ्रम है, मूढता है। वह मूढता समकिती को नहीं होती। **तथा उनके निमित्त हिंसादि द्वारा अधर्म को धर्म मानना...** सामान्य व्याख्या करते हैं। देव और धर्म की। देव के लिये हिंसा करके (धर्म माने)। यह यज्ञ आदि में करते हैं, उसमें धर्म मानना। बकरा चढ़ाते हैं।

तथा मिथ्या आचारवान्, शल्यवान्, परिग्रहवान् सम्यक्त्वव्रतरहित को गुरु मानना... जिसका आचार झूठा है, शल्यवान—तीन शल्य है। (माया) मिथ्यात्व, निदान आदि तीन शल्य जिसे होती है और परिग्रहसहित होता है। वस्त्र, पात्र आदि सहित हो, उसे

चारित्रवन्त गुरु मानना, वह गुरु मूढता है। सम्यक्त्व और व्रतरहित। आत्मा का भान नहीं और व्रत नहीं। चारित्र का लेना है न यहाँ तो? उसे **गुरु मानना इत्यादि मूढदृष्टि के चिह्न हैं।** यह मूढदृष्टि का लक्षण है। **अब, देव-गुरु-धर्म कैसे होते हैं, उनका स्वरूप जानना चाहिए, सो कहते हैं ह्र**

रागादिक दोष और ज्ञानावरणादिक कर्म ही आवरण हैं; यह दोनों जिसके नहीं हैं, वह देव है। वीतरागता हो और ज्ञान की परिपूर्णता प्रगट हुई हो। रागादि न हो अर्थात् वीतरागता हो। आवरण न हो अर्थात् केवलज्ञान और केवलदर्शन आदि अनन्त चतुष्टयरूप हों, उसे देव कहते हैं। समझ में आया? **उसके केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य ह्र ऐसे अनंतचतुष्टय होते हैं।** यह सब पंचाध्यायी की व्याख्या है। पंचाध्यायी में यह सब लिया है। देव को तो एक समय में तीन काल का ज्ञान होता है, वह देव कहलाता है। समझ में आया? भगवान प्रभु! स्वामीनारायण कहते थे न? हम प्रभु हैं, भगवान हैं। हौदे बैठे... आये थे... साधु ने पूछा, तुम अभी... हो? तो कहे, हाँ। कैसे? कि प्रभु का पेट बड़ा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ कहाँ उसके थे? .... उसके भी श्रद्धा का ठिकाना कहाँ था? यह बातें हैं। बाड़ा के वेश में थे। ...वहाँ कहाँ श्रद्धा का ठिकाना था? सब ऐसे थे। यह प्रभु कहना किसे? जिसकी प्रभुत्व शक्ति अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द और सुख की प्रगट हो गयी है। जिसे आहार नहीं, पानी नहीं, रोग नहीं, क्षुधा नहीं, तृषा नहीं—ऐसे देव (होते हैं)। उनका शरीर परम औदारिक हो गया होता है। समझ में आया? उसे देव कहा जाता है। दूसरे को देव मानना, वह तो मूढ़ता है। कहो, यह तो समझ में आये ऐसा है न? रमणीकभाई!

इसी तरह गुरु। मिथ्या आचारवान, शल्यवन्त परिग्रहवन्त, यह मूढदृष्टि के चिह्न हैं। **अब, देव-गुरु-धर्म कैसे होते हैं, उनका स्वरूप जानना चाहिए, सो कहते हैं – सामान्यरूप से तो देव एक ही है...** पंचाध्यायी में लिया है और वहाँ कहीं है। देव एक ही। जिसे दिव्यशक्ति अन्तर में आत्मा केवलज्ञान-दर्शन-आनन्द की मूर्ति है, ऐसी

जिसकी पर्याय में अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि प्रगट है, उसे दिव्यशक्ति प्रगट हुई, उसे देव कहा जाता है। समझ में आया?

और विशेषरूप से अरहंत, सिद्ध ऐसे दो भेद हैं... दो भेद हैं। अरिहन्त भी देव कहलाते हैं और सिद्ध भी देव कहलाते हैं। **तथा इनके नामभेद के भेद से भेद करें तो हजारों नाम हैं तथा गुणभेद किए जायें तो अनन्त गुण हैं।** ज्ञान-पूर्ण ज्ञान, वह देव, पूर्ण आनन्द वह देव, पूर्ण दर्शन वह देव, पूर्ण स्वच्छता वह देव, पूर्ण प्रभुता वह देव, पूर्ण कर्तृत्वशक्ति परिणमित हो गयी, इसलिए देव, ऐसे अनन्त गुण से अनन्त गुण परमात्मा के कहलाते हैं।

परमौदारिक देह में विद्यमान... देखो! देव उसे कहते हैं कि जिनका शरीर परम औदारिक हो गया होता है। उन्हें रोग नहीं होता, क्षुधा नहीं होती, तृष्णा नहीं होती। समझ में आया? यह तो भगवान को रोग हुआ, छह महीने तक... आहार लाये। आहार लिया और फिर शरीर निरोगी हो गया। सब देव-देवियाँ प्रसन्न होते हैं - ऐसा उसमें पाठ है। यह देव का स्वरूप ही नहीं है। कृत्रिम कल्पित किया है। देव के स्वरूप का उसे (ख्याल नहीं है)। परम औदारिक शरीर होता है। देखो! शरीर ही स्फटिक जैसा हो जाता है। ....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह प्रकृति औदारिक है, इनकी प्रकृति परम औदारिक। उसमें क्या है? रजकण औदारिक हैं, उनकी ही परम औदारिक विशेषता हुई। दूसरा क्या? स्फटिक जैसा शरीर हो जाता है। उसके शरीर में नजर करे तो अपना शरीर दिखता है और भव दिखते हैं। भामण्डल होता है न साथ में? ऐसा परम औदारिक शरीर। ऐसा डिब्बा ही अलग प्रकार का होता है। कुछ बात हुई थी न! जयपुर, जयपुर में है। सुधीर, उसका लड़का भाई का—पूरणचन्द गोदिका का। मैंने कहा, देखो! हीरा कहीं... केसर कोथली में नहीं रहती। कोथली समझे न? बारदान, उसमें केसर नहीं रह सकती। केसर तो डिब्बा और बरनी हो (उसमें रहती है) इसी प्रकार अरिहन्त का केवलज्ञान, दर्शन आदि परम औदारिक शरीर हो, वह साधारण नहीं होता और तीर्थंकर का शरीर तो जन्मे तब से परम औदारिक होता है। उन्हें हजारों कलश सिर पर डाले तो भी मरण नहीं होता। यहाँ तो एक पानी का कलश डाले तो मर जाए। पहले दिन का बालक हो तो (मर जाए)। ऐसा तो प्रभु

का स्वरूप और ऐसी तो उनकी डिब्बी (अर्थात्) शरीर का होता है। डिब्बी समझते हो ? पेटी। उत्कृष्ट रत्न हो, उसकी पेटी अलग प्रकार की होती है।

घर में आये थे, बताने को लाये थे। दो लाख की थी। दो लाख का न ? दो लाख का हार था उनके घर में, सोने का। डिब्बी ऐसी लम्बी-चौड़ी कोमल। दो लाख का पन्ना का हार था। तुमने दृष्टान्त दिया था, वह है यह ? ऐसी चौड़ी। दो लाख का पन्ना का हार था। पूरणचन्द गोदिका के घर में। उनका लड़का सुधीर है न ? वह बताने के लिये लाया था। देखो ! यह... है। ...हीरा लाया था। ....अस्सी हजार का एक हीरा। इतनी डिब्बी थी... वह डिब्बी भी अलग प्रकार की होती है। हीरा को कहीं थैले में नहीं रखा जाता। कोथला समझते हो ? थैला। सूतली... सूतली का थैला। उसमें हीरा और केसर रखा जाता होगा ? लो ! यह जवेरी रहे, लो ! ...सोने का एक वह था। कीमती था, दो लाख का हार था। ऐसे तो बहुत देखे हैं।

यहाँ तो कहते हैं, हीरा और केसर थैले में नहीं रहते। इसी प्रकार केवलज्ञान और केवलदर्शन हो, उसका शरीर स्फटिक जैसा हो जाता है। ऐसे (हों), उन्हें देव कहा जाता है। उन्हें अरिहन्त कहा जाता है। ऐसे अरिन्त को माने और फिर रोग माने, क्षुधा लगना माने, आहार ले तब तृप्ति (होती है, ऐसा माने) वे अरिहन्त नहीं, वह अरिहन्त के स्वरूप को जानता नहीं। समझ में आया ?

घातियाकर्मरहित... परम औदारिक शरीर हो और चार घातिकर्म का नाश हो। **अनन्तचतुष्टयसहित धर्म का उपदेश करनेवाले...** वीतरागस्वरूप का उपदेश कहनेवाले हों। **ऐसे तो अरिहंतदेव हैं...** उसे अरिहन्तदेव कहा जाता है। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार से माने तो वह मूढ जीव है। उसे मूढ़ता है, उसे मिथ्यात्व है। समझ में आया ?

और **तथा पुद्गलमयी देह से रहित...** सिद्ध की बात करते हैं। यह पुद्गलमय देह, जो मिट्टी, उससे रहित। **लोक के शिखर पर विराजमान...** लोक के शिखर पर सिद्ध भगवान स्थित है। सम्यक्त्वादि **अष्टगुणमंडित अष्टकर्मरहित...** आठ गुणसहित और आठ कर्मरहित। आठ गुणसहित और आठ कर्मरहित, **ऐसे सिद्ध देव हैं।** उन्हें देव कहते हैं, उन्हें अशरीरी सिद्ध कहा जाता है। समझ में आया ?

उनके नाम हैं। उन्हें अरिहन्त कहते हैं। कर्म को हनन किया, इसलिए अरिहन्त,

जिन कहते हैं। जीता - अज्ञान और राग को (जीता), इसलिए जिन, सिद्ध कहते हैं। इसकी व्याख्या है, हों! यह सब गाथाएँ हैं। पंचाध्यायी में सब गाथाएँ हैं। परमात्मा कहते हैं। उन्हें महादेव (कहते हैं)। बड़ी में बड़ी सब शक्ति प्रगट हो गयी, इसलिए उन्हें महादेव कहते हैं। ऐसे अरिहन्त, हों! दूसरे महादेव, वे महादेव नहीं।

मुमुक्षु : व्यवहार में लाभ न करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या लाभ? लाभ क्या करे? लाभ कोई किसी को करता है? ऐसा स्वरूप है, ऐसा जो जाने, उसे अपने ज्ञान की ओर का नमूना मिलता है। ओहो! ऐसा आत्मा! यह अर्थात् ऐसा मैं हूँ।

मुमुक्षु : व्यवहार में लाभ...

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार में लाभ कौन करता था? धूल भी करता नहीं। लाभ की व्याख्या क्या? यह पैसा मिले और धूल मिले, यह लाभ है? यह तो पूर्व का पुण्य होवे तो आते हैं, उनके साथ क्या सम्बन्ध है? पापी मिथ्यादृष्टि कसाई हो... कहा न? सोने की कुर्सी में बैठता है। मुम्बई, क्या कहलाता है बान्द्रा का? बान्द्रा कत्लखाना। उसमें क्या है? वह बड़ा आया नहीं था? ख्रिस्ती का। मुम्बई में पोप (आया था)। कितने ही करोड़ रुपये उसने कब्जे में कर रखे हैं। कितने करोड़ की सब जहाज ले गया। माल, वह तो माँस खाता होगा। उसे नरक में जाना है। सेठी! ऐसे को अज्ञानी देव और गुरु माने। भान नहीं होता। बड़ा टोपावाला-रूपवान शरीर हो। यह हमारे गुरु हैं। समझ में आया? भान नहीं होता। सब मूढ़ जीव हैं। बाहर का पुण्य हो, उसके साथ क्या सम्बन्ध है? अरबपति हो। है न अमेरिका और... ?

शंकर,... उन्हें शंकर कहते हैं। ऐसा परमात्मस्वरूप, जिन्हें पूर्ण सुख प्रगट हुआ है, पूर्ण आनन्द प्रगट हुआ है। उन्हें-परमात्मा को और अरिहन्त और सिद्ध को शंकर कहते हैं। उन्हें शंकर कहते हैं। **विष्णु,...** सर्वव्यापक। ज्ञान लोकालोक को जानता है, इस अपेक्षा से व्यापक भी कहलाता है। उसे विष्णु कहा जाता है। **ब्रह्मा,...** स्वयं अपने पूर्ण आनन्द की उत्पत्ति के कारण वह स्वयं ब्रह्मा है। आनन्द की प्रजा को उत्पन्न करे, वह ब्रह्मा। समझ में आया? **हरि,..** दुःख को हरे, वह हरि। परन्तु ऐसा आत्मा, हों! राग को,

दु:ख को हरे, वह हरि। ऐसा भगवान आत्मा राग-द्वेष और अज्ञान जो दु:खमय है, उसे हरे-नाश करे और वीतराग को, आनन्द को प्रगट करे, उसे देव और हरि कहा जाता है। **बुद्ध,...** यह बुद्ध। पूर्ण ज्ञानमय को बुद्ध कहते हैं। वे बौद्ध हैं, वे बुद्ध नहीं हैं। क्षणिक समय की पर्याय को माने आत्मा को, वे बुद्ध नहीं हैं। **सर्वज्ञ,...** एक समय में तीन काल को जाने। **वीतराग...** रागरहित हो। परमात्मा परमस्वरूप प्रगट हुआ हो। **इत्यादि अर्थ सहित अनेक नाम हैंह्र ऐसा देव का स्वरूप जानना।** उसे देव मानना। इस देव के अतिरिक्त माने, वह मूढ़ जीव मिथ्यादृष्टि है। वह आँगन में मिथ्यात्व को निमन्त्रण देता है, ऐसा कहते हैं।

और **गुरु का भी अर्थ से विचार करें...** अब कहते हैं, गुरु भी वास्तव में तो वही कहलाते हैं, ऐसा कहते हैं। **अरिहंत देव ही हैं,...** परम गुरु, सर्वज्ञदेव परम गुरु। महा बड़ी में बड़ी शक्ति का विकास जिन्हें हो गया, वे परम गुरु हैं। **क्योंकि मोक्षमार्ग का उपदेश करनेवाले अरिहंत ही हैं,...** गुरु तो मोक्षमार्ग का उपदेश देनेवाले परमात्मा अरिहन्त ही गुरु-परम गुरु हैं। **वे ही साक्षात् मोक्षमार्ग का प्रवर्तन कराते हैं...** लो! सर्वज्ञ परमात्मा की वाणी में साक्षात् मोक्ष का मार्ग आता है।

तथा अरिहंत के पश्चात् छद्मस्थ ज्ञान के धारक... अरिहन्त के पश्चात् आचार्य, उपाध्याय, साधु **उन्हीं का निर्ग्रन्थ दिगम्बर रूप धारण करनेवाले मुनि हैं...** आचार्य, उपाध्याय, साधु तीनों दिगम्बर होते हैं। वस्त्र का एक भी धागा नहीं होता। जैसा माता से जन्मे, वैसे होते हैं। **दिगम्बर रूप धारण करनेवाले मुनि हैं, सो गुरु हैं;...** वे गुरु कहलाते हैं। समझ में आया? वस्त्र-पात्र रखे और हम गुरु हैं और साधु हैं, (ऐसा माने) वह तो मिथ्यादृष्टि है परन्तु उन्हें माननेवाला भी मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। पण्डितजी! गजब भाई! तुम्हारा मार्ग मिथ्या है, कहते हैं। ऐई! वस्तु का स्वरूप ऐसा है, भाई! मार्ग का प्रश्न नहीं, वस्तु की स्थिति ही ऐसी है।

साधु हो, उन्हें अन्तर में वीतरागता प्रगट होती है, वीतराग का परम आनन्द का आह्लाद होता है, उनकी बाह्यदशा एकदम नग्न दिगम्बर वस्त्र के धागे रहित उन्हें होती है। समझ में आया? ऐसे चारित्रवन्त गुरु माने जाते हैं। इसके बिना दूसरों को चारित्रवन्त गुरु माने, वह मूढ है। समझ में आया?

क्योंकि अरिहंत की सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र की एकदेश शुद्धता... अरिहन्त को पूर्ण शुद्ध है, इन्हें एकदेश शुद्धपना सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र तीनों इन्हें होते हैं। तिन्हीं के अर्थात् इन्हें। साधु हैं, उन्हें सम्यक् अनुभव होता है, सम्यक् प्रतीति होती है और सम्यक् स्वरूप का आनन्द का आचरण होता है। समझ में आया? **वे ही संवर–निर्जरा–मोक्ष का कारण हैं,...** यह अन्तर की सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र की निर्मल शुद्ध उज्ज्वल दशा, वही संवर, निर्जरा और मोक्ष का कारण है। बाहर का क्रियाकाण्ड कोई संवर, निर्जरा और मोक्ष का कारण नहीं है। समझ में आया? **इसलिए अरिहंत की भाँति एकदेशरूप से निर्दोष हैं,...** अरिहन्त जैसे पूर्ण निर्दोष हैं, वैसे यह गुरु भी एक भाग में—एकदेश पूर्ण निर्दोष हैं। **वे मुनि भी गुरु हैं,...** अरिहन्त तो गुरु हैं ही परन्तु ये भी एक गुरु कहने में आते हैं। **मोक्षमार्ग का उपदेश करनेवाले हैं।** उसमें आया था न? मोक्षमार्ग का उपदेश करनेवाले अरिहन्त साक्षात मोक्षमार्ग प्रवर्तन कराते हैं।

ऐसा मुनिपना सामान्यरूप से एक प्रकार का है... मुनिपना सामान्य एक ही प्रकार से है। **विशेषरूप से वही तीन...** आचार्य, उपाध्याय और साधु। **इस प्रकार यह पदवी की विशेषता...** है। तीन की पदवी विशेष है। अन्तर में तो वीतराग आनन्द के उपयोगी, शुद्धोपयोगी हैं। उसमें आता है, हों! समझ में आया?

मुमुक्षु : मोक्षमार्गप्रकाशक।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्षमार्गप्रकाशक नहीं। यह बात तो पंचाध्यायी में है। वहाँ मुनि की व्याख्या है। शुद्धोपयोगी की, भाई! शुद्धोपयोगी लिये हैं। ६९४ गाथा है।

अथ सूरिरूपाध्यायो द्वावेतौ हेतुतः समौ।
साधु साधुरिवात्मज्ञौ शुद्धौ शुद्धोपयोगिनौ॥६९४॥

(पंचाध्यायी की) ६९४ गाथा है, कहते हैं। **अन्तरंग कारण की अपेक्षा विचार करने पर आचार्य, उपाध्याय दोनों ही समान हैं, साधु हैं, साधु के समान आत्मज्ञ हैं, साधु के समान शुद्ध हैं और शुद्ध उपयोगवाले हैं।** शुद्धोपयोगी, उन्हें साधु कहते हैं, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? ....यह गृहस्थ का लेख है। आहाहा! शुद्धोपयोगी। शुद्धोपयोग, वही मुनिपना है। यह प्रवचनसार में है, मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया है। साधु अर्थात् नग्न–

दिगम्बर। अन्तर में शुद्धोपयोग। महाव्रतादि शुभभाव विकल्प। छबीलभाई! महाव्रत के कारण मिथ्यादृष्टि ऊँचा गया, वह कहीं ऊँचा नहीं गया। ऐसे उसे कहीं नौवें ग्रैवेयक जाना है। ....इसलिए कहीं मनुष्य ऊँचा हो गया? ऐसे शुभभाव...

मुमुक्षु : शुभभाव....

पूज्य गुरुदेवश्री : देव और नारकी दोनों समान हैं। पशु जैसी वृत्ति है, सब समान हैं। पशु कहे हैं। पशु मिथ्यादृष्टि। आहाहा! समझ में आया? भान नहीं कि आत्मा अन्दर स्वरूप शुद्ध भावना... शुभ दया, दान, व्रत के परिणाम से भिन्न चैतन्य है। उसका अन्तर में भान और अनुभव (होता है) वह धर्म, समकित, ज्ञान और चारित्र है। बाहर की क्रिया-फ्रिया वह कहीं चारित्र नहीं है। ऐसा लिख गये हैं। छठे गुणस्थान तक शुभभाव ही होता है और शुभभाववाला ही समकिती और ज्ञानी... शुभभाव में ही ऐसा... लो!

मुमुक्षु : छठे गुणस्थान तक व्यवहार...

पूज्य गुरुदेवश्री : ...यहाँ तो व्यवहार होता है, ऐसा बतलाते हैं। उसकी आराधना तो स्वरूप में होती है। साध्यते इति साधु। आता है न। साधु-आत्मा के स्वरूप को साधे, वह साधु, ऐसा आता है। पंचाध्यायी में आता है। साधु की व्याख्या, समझ में आया? साधु है, देखो! 'रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग को साधे, सो साधु।' यह पन्द्रहवें पृष्ठ पर है। तीसरी लाईन है। साधु है, सो रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग को साधे, सो साधु। सम्यक् आत्मा पूर्ण स्वरूप अखण्ड आनन्द का कन्द है, ऐसी प्रतीति, अनुभव ज्ञान और रमणता (हुई है), ऐसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र को साधे, वह साधु। महाव्रत को साधे और नग्नपने को साधे, उसकी बात यहाँ है कहाँ? उन्हें होता अवश्य है। समझ में आया? बहुत कठिन काम। सम्प्रदायवाले को बाहर निकलना, उसमें से छोड़ना भारी कठिन पड़ता है।

आत्मा का अन्तर शुद्ध पवित्र स्वभाव है। पुण्य-पाप, वे कहीं पवित्र स्वभाव नहीं हैं। इसलिए यहाँ कहते हैं कि आत्मा... यहाँ तो संवर-निर्जरा का कारण कहना है। उन्हें कैसे संवर-निर्जरा का कारण कहा? उन्हें शुद्धता का भाव प्रगट हुआ है। आचार्य, उपाध्याय, साधु को शुद्धपवित्र ऐसा श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, ऐसा भाव प्रगट हुआ है। वह भाव संवर, निर्जरा और मोक्ष का कारण है। देखो! है न अन्दर? देखो!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं वहाँ। देखो! ....मुनिपना की क्रिया एक ही है। ऊपर आ गया है न, **संवर, निर्जरा, मोक्ष का कारण...** लो! **एकदेश शुद्धता उनके पायी जाती है और वे ही संवर, निर्जरा, मोक्ष का कारण है, इसलिए अरिहन्त की भाँति एकदेशरूप से निर्दोष हैं...**

ऐसा मुनिपना सामान्यरूप से एक प्रकार का है और विशेषरूप से वही तीन प्रकार का है... उनके मुनिपने की क्रिया समान ही हैं;..... तीनों में। आचार्य हो, उपाध्याय हो, (या साधु हो)। तीनों को मुनिपने की क्रिया एक ही होती है। **बाह्य लिंग भी समान ही है,....** दिगम्बर ही होते हैं। फिर किसी को कपड़े का टुकड़ा हो और किसी न हो, ऐसा नहीं हो सकता। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : दो प्रकार के हुए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : जिनकल्पी मुनि अर्थात् अकेले रहें और उनके साथ... वस्त्रवाला वह स्थविरकल्पी और वस्त्ररहित जिनकल्पी, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : वस्त्रवाला....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्या बात है। वे कहते थे। हम जब भावनगर गये थे न? उनने मक्खन लगाया। वस्त्र हो, वह स्थविरकल्पी कहलाता है और वे (जिनकल्पी)। भानरहित है। स्थविरकल्पी और जिनकल्पी साधु दोनों नग्न ही होते हैं, दोनों जंगल में ही बसते हैं। स्थविरकल्पी होते हैं अधिक साधु होते हैं। जिनकल्पी अकेले होते हैं, बाकी दूसरा कोई अन्तर नहीं है। दूसरा अन्तर माने, उसे साधुपने का-गुरुपने का भान नहीं है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न? स्थापित किया। (वस्त्रवाले) जिनकल्पी, स्थविरकल्पी है ही नहीं। दोनों मिथ्या बात है, अज्ञान है। यही होता है - दोनों नग्न-दिगम्बर होते हैं, अन्तर में वीतरागता होती है, शुद्धता होती है। यहाँ सिद्ध करना है न? पुण्य-पाप के परिणाम नहीं। शुद्धता। शुद्धता तो दर्शन, ज्ञान और चारित्र, वह शुद्धता होती है। शुद्ध वस्तुस्वभाव की प्रतीति शक्ति में से व्यक्ति आयी, उसका ज्ञान आया और उसमें से

वीतरागता आयी। शुद्ध में से शुद्धता आयी, वह संवर-निर्जरा मोक्ष का कारण है - ऐसा यहाँ कहना है। समझ में आया? आहा! बाहर के लक्ष्य से उत्पन्न हुए विकल्प तो आस्रव और बन्ध का ही कारण है। आहाहा! जगत को भारी कठिन। बाड़ा में से निकलकर यह मानना (कठिन पड़ता है)। समझ में आया?

पञ्च महाव्रत, पञ्च समिति, तीन गुप्ति - ऐसे तेरह प्रकार का चारित्र भी समान ही है,... व्यवहार। ठीक। **तप भी शक्ति अनुसार समान ही है,..** ऐसा। शक्ति... आचार्य, उपाध्याय, ...**साम्यभाव भी समान है,..** दूसरा सबका समान है। **मूलगुण उत्तरगुण भी समान है,..** आचार्य, उपाध्याय, साधु तीनों को समान है। **परिषह उपसर्गों का सहना भी समान है, आहारादि की विधि भी समान है,..** आचार्य, उपाध्याय बहुत ऊँचे हो गये हैं, इसलिए उनके लिये बनाया हुआ आहार ले और साधु न ले, ऐसा नहीं है। तीनों के लिये आहार की विधि निर्दोष (होती है)। उनके लिये की हुई नहीं होती, ऐसा लिया है। समझ में आया? अभी कितने ही ऐसा कहते हैं, द्रव्यानुयोग का ज्ञान हो और साधु, आचार्य, उपाध्याय हो जाए, इसलिए फिर उनके लिये सवेरे से शाम...

मुमुक्षु : यह तो द्रव्यानुयोग....

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्यानुयोग क्या? परन्तु समिति बिना साधु किसका? द्रव्यानुयोग का ज्ञान नहीं परन्तु द्रव्यानुयोग का अनुभव। द्रव्य अर्थात् आत्मा का अनुभव न होवे तो समकित किसका? उसमें फिर आहार-पानी वापस उनके लिये बनाया हुआ हो। चाय, दूध शाम-सवेरे, रगडा चले। यह तो सब बड़े महाराज को चाहिए। धर्म की प्रभावना का हेतु है, सब मूढ़ता है, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसे साधु को गुरु मानना, वह मिथ्यादृष्टि है, मूढ़ है, उसे मिथ्यात्व का उदय है। समझ में आया? मार्ग तो ऐसा है।

चर्या, स्थान, आसनादि भी समान हैं,... विहार, खड़े रहना, बैठना आदि यह सबकी क्रिया समान है। **मोक्षमार्ग की साधना, सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र भी समान हैं।** तीनों ही-आचार्य, उपाध्याय, साधु को सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों होते हैं वीतरागी। शुद्ध... शुद्ध। यहाँ शुद्ध की व्याख्या है न?

ध्याता, ध्यान, ध्येयपना भी समान है,... ध्याता आत्मा, ध्यान वीतरागी, ध्येय

आत्मा का, यह सब तीनों को समान है। **ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयपना भी समान है, चार आराधना की आराधना,...** ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की आराधना, यह समान है। **क्रोधादिक कषायों का जीतना इत्यादि मुनियों की प्रवृत्ति है, वह सब समान है।**

विशेष यह है कि जो आचार्य हैं, वे पञ्चाचार अन्य को ग्रहण कराते हैं... इतना अन्तर, बस। **तथा अन्य को दोष लगे तो उसके प्रायश्चित्त की विधि बतलाते हैं,...** इतना अन्तर। **धर्मोपदेश, दीक्षा एवं शिक्षा देते हैं – ऐसे आचार्य गुरुवन्दना करने योग्य हैं।** ऐसे आचार्य वन्दन करने योग्य है। आचार्य मानकर। समझ में आया?

जो उपाध्याय हैं, वे वादित्व, वाग्मित्व,... वचन कला में अथवा वाद में अथवा **कवित्व, गमकत्व...** अर्थ करने में **इन चार विद्याओं में प्रवीण होते हैं; उसमें शास्त्र का अभ्यास प्रधान कारण है।** उन उपाध्याय को शास्त्र की प्रधानता है। **जो स्वयं शास्त्र पढते हैं और अन्य को पढाते हैं, ऐसे उपाध्याय गुरु वन्दनयोग्य हैं;...** अकेले शास्त्र पढ़ें, ऐसा नहीं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित होते हैं। उन सहित की बात है। आहाहा! **उनके अन्य मुनिव्रत, मूलगुण, उत्तरगुण की क्रिया आचार्य के समान ही होती है...** लो! अब साधु। देखो!

तथा साधु रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग की साधना करते हैं... कहो।

मुमुक्षु : निश्चय-व्यवहार...

पूज्य गुरुदेवश्री : भले.. हो। निश्चय हो और व्यवहार हो, वह जानना। ऐसा ही लिखा जाता है, निश्चय-व्यवहार के आराधक हैं, उसमें क्या है? व्यवहार होता अवश्य है न! समझ में आया? **उनके दीक्षा, शिक्षा और उपदेशादि देने की प्रधानता नहीं है,...** साधु दीक्षा, शिक्षा को नहीं दे सकते। उपदेश... साधु दे। पहले अपना काम करते हैं। **अपने स्वरूप की साधना में ही तत्पर होते हैं;...** अपने स्वरूप का साधन। साधु दिगम्बर मुनि तो अपने आनन्दस्वरूप में तत्पर होते हैं। आहाहा! शुद्धोपयोग की रमणता में तत्पर हैं, उन्हें साधु कहा जाता है। आहाहा! ऐसा सब पूरा बदल गया है। दिगम्बर सम्प्रदाय में सब बदल गया है। पूरी लाईन बदल गयी है। दूसरों ने तो बदल डाली है। (इन लोगों ने) नाममात्र रहने दिया।

जिनागम में जैसी निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि की प्रवृत्ति कही है, वैसी सभी

प्रवृत्ति उनके होती है – ऐसे साधु वन्दना के योग्य हैं। अन्यलिंगी–वेषी व्रतादिक से रहित, परिग्रहवान, विषयों में आसक्त गुरु नाम धारण करते हैं, वे वन्दनयोग्य नहीं हैं। समझ में आया ?

इस पंचमकाल में जिनमत में भी भेषी हुए हैं। सुजानमलजी! यहाँ तो मार्ग हो वह आएगा। **श्वेताम्बर,...** श्वेताम्बर भी भेषी है। द्रव्यलिंगी भी नहीं। उन्हें मिथ्यादृष्टि का वेश है। ऐई! चन्दुभाई! ऐसा मार्ग है। श्वेताम्बर हैं, उन्होंने जैनधर्म को बिगाड़ा है। अनादि सनातन दिगम्बर धर्म था, उसमें से निकलकर कल्पित शास्त्र और कल्पित देव–गुरु... बनाया है। लोगों को बुरा तो लगता है... श्वेताम्बर लड़की–लड़का दे नहीं। कौन लड़का–लड़की दे ? छोड़ न! आहाहा! श्वेताम्बर, वे सर्व वन्दनयोग्य नहीं है। उनके आचार्य, उपाध्याय, साधु, (वे वास्तव में) आचार्य, उपाध्याय, साधु हैं ही नहीं। मिथ्यादृष्टि और कुलिंगी है। आहाहा! ऐई! जयन्तीभाई! ऐसा काम भारी कठिन। अनमेल होकर रहना पड़े! अनमेल ही है और अकेला ही है। कौन है दूसरा इसे ? आहाहा! अन्य लिंगी वेशी, व्रतादि का भी संयम नहीं। एक यापनीयसंघ हुआ है। नग्न रहते हैं परन्तु मानते हैं सब श्वेताम्बर। **गोपुच्छपिच्छसंघ,...** गाय की पूँछ रखते हैं। **नि:पिच्छसंघ,..** पिच्छिरहित एक साधु होते हैं। **द्राविड़संघ आदि अनेक हुए हैं; यह सब वन्दनयोग्य नहीं हैं।**

मूलसंघ, नग्नदिगम्बर, अट्ठाईस मूलगुणों के धारक, दया के और शौच के उपकरण मयूरपिच्छक, कमण्डल धारण करनेवाले,... मोर की पिच्छि और कमण्डल जो दया का (और शुचिता का) उपकरण रखते हैं। **यथोक्त विधि से आहार करनेवाले गुरु...** निर्दोष विधि से आहार (ग्रहण करे) और दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीन की आराधन (करनेवाले हों) वे **वन्दनयोग्य हैं, क्योंकि जब तीर्थंकर देव दीक्षा लेते हैं, तब ऐसा ही रूप धारण करते हैं,...** ऐसा उदाहरण दिया। तीर्थंकर परमात्मा त्रिलोकनाथ जब दीक्षा धारण करते हैं, तब ऐसा ही नग्न–दिगम्बर रूप ही धारण करते हैं। समझ में आया ? इन्द्र ने एक वस्त्र बारह महीने दिया, यह सब मिथ्या–कल्पित बातें हैं। यह वीतरागमार्ग की (बात) नहीं है। सब कल्पित आचार्यों ने अपने मत को पोषण करने–मिथ्यात्व को पोषण करने के लिये यह सब बनाया है। ऐ.. लक्ष्मीचन्दभाई!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ...यह बात बाद में। इसका कुछ नहीं...

तीर्थंकर देव दीक्षा लेते हैं, तब ऐसा ही रूप धारण करते हैं, अन्य भेष धारण नहीं करते;... अब आया, लो! **इसी को जिनदर्शन कहते हैं।** वह आया '**दंसणमग्गह वोच्छामि**' उसे जैनदर्शन कहते हैं, देखो! जैनदर्शन अन्तर के स्वरूप का सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और वीतरागी शुद्धत्व परिणमन, अट्ठाईस मूलगुण आदि, नग्न दिगम्बर दशा को जैनदर्शन कहा जाता है और इस जैनदर्शन की-इस वाले की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहा जाता है। समझ में आया? अन्तिम में लिया है। ...४१५ पृष्ठ, अन्त में लिया है न?

'जिनदर्शन निर्ग्रन्थरूप तत्त्वार्थ धारण।' पहले दर्शनपाहुड़ का संक्षिप्त कर दिया। ४१५ पृष्ठ मेरे पुराने में है। 'जिनदर्शन निर्ग्रन्थरूप तत्त्वार्थ धारण।' यह दर्शनपाहुड़ की व्याख्या इतने शब्दों में रख दी। है? 'जिनदर्शन निर्ग्रन्थरूप।' यह पहले पाहुड़ का संक्षिप्त किया; और तत्त्वार्थश्रद्धान, ऐसे की बराबर श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन। यह दो इसमें वर्णन किया है। सूत्र में यह आया। आठों पाहुड़ का संक्षिप्त किया है। आठों के नाम दिये हैं। समझ में आया? अरे! गजब भाई!

इसी को जिनदर्शन कहते हैं। इसे जैनदर्शन वीतरागमार्ग में त्रिलोकनाथ केवलज्ञानी के पन्थ में अन्तर के स्वरूप का सम्यग्दर्शन, ज्ञान और वीतरागी दशा, बाह्य में नग्न-दिगम्बर वेश, इसे जैनदर्शन कहा जाता है। उस जैनदर्शन का यह मत और अभिप्राय है। समझ में आया? इनने मिलान करके किया है, हों! उस अर्थ में भाई ने नहीं किया। अष्टपाहुड़ की टीका मिलान कर गाथाओं को न्याय देने के लिये मिलान कर (किया है)। ....है परन्तु उस प्रमाण मैंने नहीं किया। दंसणमग्गं - दर्शन का मार्ग, दर्शन का अभिप्राय, दर्शन का मत। उसकी मूल श्रद्धा सम्यग्दर्शन है...। **दंसणमूलो धम्मो** ऐसा जो दर्शन, उसका मूल अभिप्राय। श्रद्धा सम्यग्ज्ञान, चारित्र आदि का मूल है। समझ में आया?

धर्म उसे कहते हैं जो जीव को संसार के दुःखरूप नीच पद से मोक्ष के सुखरूप उच्च पद में स्थापित करे... उसे धर्म कहते हैं। उस पुण्य-पाप से उद्धार करके स्वभाव में लावे, उसे धर्म कहते हैं। आहाहा! आता है न? रत्नकरण्डश्रावकाचार

(गाथा २) में (आता है)। संसार (के) दु:खरूप नीच पद से ऊँचा (लावे), यह भाषा इन्होंने वही की है। ...वह धर्म। दु:ख से उद्धार करके सुख में लावे, वह धर्म। **मोक्ष के सुखरूप उच्च पद में स्थापित करे – ऐसा धर्म मुनि–श्रावक के भेद से, दर्शन–ज्ञान–चारित्रात्मक एकदेश...** (एकदेश) श्रावक का और सर्वदेश मुनि का। **निश्चय–व्यवहार द्वारा दो प्रकार कहा है;...** है न? दो है न! **उसका मूल सम्यग्दर्शन है;...** देखो! इन सबका मूल सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन न होवे तो कोई चीज़ नहीं होती।

उसके बिना धर्म की उत्पत्ति नहीं होती। सम्यग्दर्शन के बिना धर्म की उत्पत्ति नहीं होती। **इसप्रकार देव–गुरु–धर्म में तथा लोक में यथार्थ दृष्टि हो और मूढ़ता न हो, सो अमूढ़दृष्टि अंग है।** यह धर्मी का चौथा प्रकार—अंग कहा जाता है।

अपने आत्मा की शक्ति को बढ़ाना, सो उपबृंहण अंग है। पाँचवाँ बोल। **सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र को अपने पुरुषार्थ द्वारा बढ़ाना ही उपबृंहण है।** अपना स्वरूप ज्ञान, दर्शन, आनन्द, वीर्य से–पुरुषार्थ से बढ़ाना, इसका नाम समकिती का पाँचवाँ गुण है। ....**उसे उपगूहन भी कहते हैं– ऐसा अर्थ जानना चाहिए कि जिनमार्ग स्वयंसिद्ध है; उसमें बालक के तथा असमर्थ जन के आश्रय से जो न्यूनता हो,...** कोई बालक या वृद्ध है या साधारण में फेरफार हो परन्तु अनुभव समकिती ज्ञानी धर्मी हो... दूसरे ये दोष धर्मात्मा गुप्त रखता है, बाहर प्रसिद्ध करना यह तो व्यवहार की बात है। अपने राग को गोपन करता है अर्थात् राग होने नहीं देता, यह उपगूहन है। यह पाँचवाँ आचार हुआ।

जो धर्म से च्युत होता हो उसे दृढ करना, सो स्थितिकरण अंग है। यह समकिती का छठवीं किरण अथवा गुण अथवा लक्षण अथवा आचरण है। **स्वयं कर्मोदय के वश होकर कदाचित् श्रद्धान से तथा क्रिया–आचार से च्युत होता हो तो अपने को पुरुषार्थपूर्वक पुन: श्रद्धान में दृढ करे;...** अपने को भी पुरुषार्थ द्वारा समकित में, चारित्र में अन्तर होता हो तो दृढ़ करना, यह स्थितिकरण स्वयं के लिये है। **उसी प्रकार अन्य कोई धर्मात्मा धर्म से च्युत होता हो तो उसे उपदेशादिक द्वारा धर्म में स्थापित करे, वह स्थितिकरण अंग है।** लो!

और **अरिहंत, सिद्ध, उनके बिम्ब, चैत्यालय...** अर्थात् मन्दिर। **चतुर्विध संघ**

और शास्त्र में दासत्व हो – जैसे स्वामी का भृत्य दास होता है तदनुसार, वह वात्सल्य अंग है। इसका नाम वात्सल्य अंग है। धर्मी जीव अरहन्त सिद्ध के दास हैं। वात्सल्य है न? प्रेम है। उनके बिम्ब, प्रतिमा के दास हैं। चैत्यालय–मन्दिर और चतुर्विध संघ—साधु, आर्यिका, श्रावक और श्राविका। समकिती धर्मी जीव उनका दास होता है। उनके समक्ष इसकी उद्धताई नहीं होती, ऐसा कहते हैं।

धर्म के स्थान पर उपसर्गादि आयें उन्हें अपनी शक्ति अनुसार दूर करे,... लो। धर्म के स्थान में उपसर्ग आदि हो तो अपनी शक्ति प्रमाण मिटावे। **अपनी शक्ति को न छिपाये – यह सब धर्म में अति प्रीति हो, तब होता है।** जिसे धर्म में प्रेम हो, उसे ऐसे भाव आते हैं। कहो, समझ में आया? अब रहा प्रभावना। आठवाँ बोल।

धर्म का उद्योत करना, सो प्रभावना अंग है। रत्नत्रय द्वारा अपने आत्मा का उद्योत करना तथा दान, तप, पूजा–विधान द्वारा एवं विद्या, अतिशय–चमत्कारादि द्वारा जिनधर्म का उद्योत करना... व्यवहार और निश्चय, दोनों। अपना शुद्धस्वभाव पवित्र धर्म की खान है। उसमें एकाग्रता की वृद्धि करना। समझ में आया? प्र–भावना। प्र–विशेष, भावना–एकाग्रता। **अपने आत्मा का उद्योत करना...** आत्मा का प्रकाश विशेष करना। भगवान आत्मा जलहलज्योति चैतन्य, आनन्द, उसकी परिणति में उद्योत / प्रकाश बढ़ाना, वह प्रभावना है। बाहर में दान, तप, पूजा ऐसे विधान से (उद्योत करना)। यह बाहर का रह गया। वह (अन्तरंग का) पड़ा रहा। **विद्या, अतिशय–चमत्कारादि द्वारा जिनधर्म का उद्योत करना, वह प्रभावना अंग है।**

इस प्रकार यह सम्यक्त्व के आठ अंग हैं; जिसके यह प्रगट हों, उसके सम्यक्त्व है – ऐसा जानना चाहिए। समझ में आया?

प्रश्न – यदि यह सम्यक्त्व के चिह्न मिथ्यादृष्टि के भी दिखाई दें तो सम्यक्–मिथ्या का विभाग कैसे होगा? प्रश्न है। मिथ्यादृष्टि में भी ऐसा हो और समकित में भी ऐसा हो तो हमें उनकी भिन्नता किस प्रकार करना? भिन्न किस प्रकार करना? विभाग किस प्रकार करना?

समाधान – जैसे चिह्न सम्यक्त्वी के होते हैं, वैसे मिथ्यात्वी के तो कदापि नहीं होते, तथापि अपरीक्षक को समान दिखाई दें... परीक्षा नहीं आती हो, उसे सब

समान लगते हैं। मिथ्यादृष्टि, दान, प्रभावना... सम्यग्दृष्टि दोनों की समान लगती है। **परीक्षा करके भेद जाना जा सकता है।** परीक्षा करे तो दोनों की भिन्नता ज्ञात होती है।

परीक्षा में अपना स्वानुभव प्रधान है। अपना अनुभव, वह मुख्य है। आहाहा! **सर्वज्ञ के आगम में जैसा आत्मा का अनुभव होना कहा है, वैसा स्वयं को हो तो उसके होने से अपनी वचन-काय की प्रवृत्ति भी तदनुसार होती है, उस प्रवृत्ति के अनुसार अन्य की भी वचन-काय की प्रवृत्ति पहचानी जाती है - इसप्रकार परीक्षा करने से विभाग होते हैं...** ऐसी परीक्षा से दोनों की भिन्नता का भान होता है। कहो, समझ में आया?

तथा यह व्यवहार मार्ग है,... ज्ञान से निर्णय करना, यह व्यवहार मार्ग है। **इसलिए व्यवहारी छद्मस्थ जीवों के अपने ज्ञान के अनुसार प्रवृत्ति है;...** ज्ञान में आवे, तद्नुसार प्रवृत्ति है। **यथार्थ सर्वज्ञदेव जानते हैं।** क्षण-क्षण में कोई पलटा खा जाए तो उसका ज्ञान कहीं छद्मस्थ को नहीं होता। समझ में आया? अज्ञानी की बाहर में वैसी की वैसी श्रद्धा दिखायी दे और अन्दर में मिथ्यात्व के भाव-पर को अपना मानने का हो जाए, सूक्ष्म एक समयमात्र, वह तो सर्वज्ञ जानते हैं। साधारण छद्मस्थ नहीं जान सकता। उसका कुछ काम नहीं है, ऐसा कहते हैं। **व्यवहारी को सर्वज्ञदेव ने व्यवहार का ही आश्रय बतलाया है।** ज्ञान में प्रमाण में उसे आवे, तद्नुसार उसे निर्णय करना चाहिए।

यह अन्तरंग सम्यक्त्वभावरूप सम्यक्त्व है, वही सम्यग्दर्शन है,... अन्तरंग तो सम्यक्त्वभावरूप सम्यक्त्व, वह सम्यग्दर्शन है। शुद्ध पवित्र भगवान की प्रतीति का ज्ञान और भान (हो), उसमें उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। **बाह्यदर्शन,..** लो, अब बाह्यदर्शन। आता है न? .... **व्रत, समिति, गुप्तिरूप चारित्र और तपसहित अट्ठाईस मूलगुण सहित नग्न दिगम्बर मुद्रा उसकी मूर्ति है, उसे जिनदर्शन कहते हैं।** समझ में आया?

इस प्रकार धर्म का मूल सम्यग्दर्शन जानकर... लो! धर्म का मूल सम्यग्दर्शन जानना। **सम्यग्दर्शनरहित हैं, उनके वंदन-पूजन का निषेध किया है - ऐसा यह**

उपदेश भव्यजीवों को अंगीकार करनेयोग्य है। लो! दूसरी गाथा का अर्थ बहुत दिन चला है। पंचमी से शुरु हुआ है। पहली गाथा से। आठ दिन हुए। ...कहो, समझ में आया?

सब समझने की बात है। मूढ़ता छोड़ने की (बात है)। मूल सम्यग्दर्शन का ही जहाँ ठिकाना नहीं, वहाँ एक भी धर्म नहीं होता, इसलिए इन्होंने मूल लिया है। भले बाहर के आचरण में विशेष हो। अपवास में विशेष हो, ओली और आम्बेल बहुत करते हों। समझ में आया? एक जगह न रहते हों, विहार बहुत करते हों, इसकी कुछ विशेषता नहीं है। वस्तु की स्थिति की प्रतीति और अनुभव कैसा है, इसके आधार से पूरा जैनदर्शन का मूल है। समझ में आया?

गाथा-३

अब कहते हैं कि अन्तरंगसम्यग्दर्शन बिना बाह्यचारित्र से निर्वाण नहीं होता –

दंसणभट्ठा भट्ठा दंसणभट्ठस्स णत्थि णिव्वाणं।
सिज्झंति चरियभट्ठा दंसणभट्ठा ण सिज्झंति।।३।।

दर्शनभ्रष्टाः भ्रष्टाः दर्शनभ्रष्टस्य नास्ति निर्वाणम्।
सिध्यन्ति चारित्रभ्रष्टाः दर्शनभ्रष्टाः न सिध्यन्ति।।३।।

हैं भ्रष्ट दर्शन-भ्रष्ट दर्शन-भ्रष्ट की मुक्ति नहीं।
हों सिद्ध चारित्र-भ्रष्ट दर्शन-भ्रष्ट की सिद्धि नहीं।।३।।

***अर्थ* – जो पुरुष दर्शन से भ्रष्ट हैं वे भ्रष्ट हैं; जो दर्शन से भ्रष्ट हैं उनको निर्वाण नहीं होता; क्योंकि यह प्रसिद्ध है कि जो चारित्र से भ्रष्ट हैं, वे तो सिद्धि को प्राप्त होते हैं, परन्तु जो दर्शन से भ्रष्ट हैं, वे सिद्धि को प्राप्त नहीं होते।**

***भावार्थ* – जो जिनमत की श्रद्धा से भ्रष्ट हैं, उन्हें भ्रष्ट कहते हैं और जो श्रद्धा से भ्रष्ट नहीं हैं, किन्तु कदाचित् कर्म के उदय से चारित्रभ्रष्ट हुए हैं, उन्हें भ्रष्ट नहीं कहते; क्योंकि जो दर्शन से भ्रष्ट हैं, उन्हें निर्वाण की प्राप्ति नहीं होती; जो चारित्र से भ्रष्ट होते हैं और श्रद्धानदृढ रहते हैं उनके तो शीघ्र ही पुनः चारित्र का ग्रहण होता है और मोक्ष होता**

है तथा दर्शन से भ्रष्ट होय उसी के फिर चारित्र का ग्रहण कठिन होता है, इसलिए निर्वाण की प्राप्ति दुर्लभ होती है। जैसे – वृक्ष की शाखा आदि कट जायें और जड़ बनी रहे तो शाखा आदि शीघ्र ही पुन: उग आयेंगे और फल लगेंगे, किन्तु जड़ उखड़ जाने पर शाखा आदि कैसे होंगे ? उसीप्रकार धर्म का मूल दर्शन जानना।।३।।

गाथा-३ पर प्रवचन

अब कहते हैं कि अन्तरंगसम्यग्दर्शन बिना बाह्यचारित्र से निर्वाण नहीं होता... जहाँ अन्तर भगवान आत्मा का शुद्ध का शुद्धपना प्रगट नहीं हुआ। सम्यग्दर्शन में शुद्धता की प्रगट दशा होती है, मिथ्यात्व में शुद्धता की प्रगट दशा नहीं होती। अशुद्धता का प्रगट अनुभव और अशुद्धता होती है। वह सम्यक् शुद्धता बिना बाह्य चारित्र अर्थात् क्रियाकाण्ड के शुभभाव आदि से **निर्वाण नहीं होता....** उनसे कहीं मुक्ति नहीं होती। **दंसणभट्ठा भट्ठा** लो! यह गाथा किसकी आयी?

दंसणभट्ठा भट्ठा दंसणभट्ठस्स णत्थि णिव्वाणं।
सिज्झंति चरियभट्ठा दंसणभट्ठा ण सिज्झंति।।३।।

यह कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा है।

अर्थ – जो पुरुष दर्शन से भ्रष्ट हैं... ऐसा जो जैनदर्शन, उसकी श्रद्धा से जो भ्रष्ट हैं। समझ में आया? अन्तर वीतरागी भाव दर्शन-ज्ञान-चारित्र का वीतरागी लिंग नग्न दिगम्बर जैनदर्शन। ऐसे दर्शन से भ्रष्ट हैं, वे सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हैं। समझ में आया? **जो दर्शन से भ्रष्ट हैं, उनको निर्वाण नहीं होता;...** दर्शन से भ्रष्ट हैं, वे भ्रष्ट हैं। वही वास्तविक भ्रष्ट है। जो दर्शन से भ्रष्ट है, उसकी मुक्ति नहीं है।

क्योंकि यह प्रसिद्ध है कि जो चारित्र से भ्रष्ट हैं, वे तो सिद्धि को प्राप्त होते हैं,... चारित्र से भ्रष्ट हैं, वह तो समकिती को ख्याल में होता है कि चारित्र नहीं, अचारित्र है। इसलिए उसके श्रद्धा, ज्ञान में चारित्र से भले भ्रष्ट माने, चारित्र नहीं, परन्तु उसकी श्रद्धा से भ्रष्ट नहीं हुआ। उस चारित्र से भ्रष्ट को वास्तव में भ्रष्ट नहीं कहा जाता। आहाहा! लोगों का पूरा झुकाव बाहर का है। व्रत की क्रिया से भ्रष्ट हो तो हो गया, भ्रष्ट हो गया, जाओ!

यहाँ कहते हैं कि चारित्र से भ्रष्ट हो, परन्तु दर्शन से भ्रष्ट न हो तो वह **सिज्झंति** अल्प काल में केवलज्ञान लेगा। समझ में आया?

जो दर्शन से भ्रष्ट हैं, वे सिद्धि को प्राप्त नहीं होते। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य की यह तीसरी गाथा है। लो, जो जिनमत की श्रद्धा से भ्रष्ट हैं। है न? पहले में कहा था न? मत, धर्म का मत। धर्म की मूर्ति और धर्म का मत। जिनमत अर्थात् यह। यह मोक्षमार्गी जीव साधु और उनका वेश और पंच महाव्रत के विकल्प, यह जिन व्यवहार यह... दर्शन है।

***भावार्थ* – जो जिनमत की श्रद्धा से भ्रष्ट हैं, उन्हें भ्रष्ट कहते हैं...** उन्हें भ्रष्ट कहने में आता है। **और जो श्रद्धा से भ्रष्ट नहीं हैं, किन्तु कदाचित् कर्म के उदय से चारित्रभ्रष्ट हुए हैं,...** उदय से अर्थात् पुरुषार्थ की (कमजोरी से)। समझ में आया? माघव मुनि थे न? माघव न? माघनन्दि... माघनन्दि। महान भावलिंगी साधु थे। एक जगह गये और खड़े रहे... स्त्री, कुम्हार की लड़की थी, कुँवारी थी। वह उसके बर्तन के पल्ले में अर्थात् ऐसे वह होती थी। ....तत्पश्चात् कुम्हार से (उस कन्या से) विवाह किया। साधु चारित्र से भ्रष्ट हुए परन्तु श्रद्धा से भ्रष्ट नहीं थे। समझ में आया? संघ में कोई सूक्ष्म प्रश्न उठा। उसका स्पष्टीकरण नहीं आया। मनुष्य को भेजा, वहाँ जा। कुम्हार के घर में उसके बर्तन अच्छे रहे गये। है न? बर्तन बनाते हैं। जाता है, जहाँ पूछता है, हैं! संघ में अभी मेरी श्रद्धा-ज्ञान की कीमत है! वस्तुस्थिति है, वह तो ऐसी रहेगी। एकदम... मोरपिच्छी, कमण्डल पड़े थे। वापस मुनि हो गये। समझ में आया?

दर्शन से भ्रष्ट हो, उसे भ्रष्ट कहते हैं; चारित्र से भ्रष्ट हो, उसे भ्रष्ट नहीं कहते। ऐसा है न? **सिज्झंति चरियभट्ठा** स्पष्टीकरण ऐसा किया है। चारित्र से भ्रष्ट को भ्रष्ट नहीं कहते। इसका अर्थ भ्रष्ट तो है, परन्तु उसके बदले गिर जाएगा, ऐसा है। पाठ में तो इतना है न? **दंसणभट्ठा भट्ठा दंसणभट्ठस्स.. सिज्झंति चरियभट्ठा..** भ्रष्ट का इसमें से निकाला है। भ्रष्ट नहीं, ऐसा कहते हैं। परन्तु चारित्र से भ्रष्ट हुए, तथापि वे भ्रष्ट नहीं हैं अर्थात्? श्रद्धा से भ्रष्ट नहीं हैं, इसलिए उन्हें चारित्र से भ्रष्ट होने पर (भी) उन्हें वास्तव में भ्रष्ट नहीं कहा जाता। ऐसा स्पष्टीकरण है। **दंसणभट्ठा भट्ठा..** ऐसा है न? समकित से भ्रष्ट, वह भ्रष्ट है। इसका अर्थ (कि) चारित्र से भ्रष्ट, वह भ्रष्ट नहीं है – ऐसा अर्थ निकाला। इसमें से निकाला

है। बाकी भ्रष्ट तो चारित्र से तो है, परन्तु उसकी दृष्टि में–श्रद्धा में ख्याल है कि मैं चारित्र से भ्रष्ट हूँ, अर्थात् उसकी दृष्टि में बचाव नहीं करता कि नहीं, नहीं; उसमें क्या है ? चारित्र नहीं है, मुझमें दोष है। उसे श्रद्धा भ्रष्ट नहीं है। उसे सुधरने का अवसर है परन्तु श्रद्धा भ्रष्ट है, उसे सुधरने का अवसर नहीं है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)